सम्पादक की कलम से

भारत में राजनीति का स्तर कितना गिरता जा रहा है? अब विरोधी दलों ने सुषमा स्वराज पर हमला बोल दिया। विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने इराक के मोसुल में गुमशुदा 39 भारतीय लोगों की हत्या की पुष्टि क्या की, विरोधियों ने संसद में तूफान उठा दिया। उन्होंने सिर्फ एक ही टेक लगा रखी थी कि सुषमा ने पहले बार-बार यह दावा क्यों किया था कि वे सब लोग सुरक्षित हैं और उनकी तलाश जारी है। विरोधियों का आरोप यह है कि सुषमा ने मृतकों के परिवारों के साथ धोखा किया। इन विरोधियों से कोई पूछे कि किसी प्रामाणिक जानकारी को प्राप्त किए बिना सुषमा यह कैसे कह देतीं कि वे सब मारे गए?

मृतकों के परिवारों के साथ धोखा करने से सुषमा या सरकार को क्या फायदा होने वाला था ? सुषमा स्वभाव से आशावादी करुणामय महिला हैं और मुसीबत में फंसे भारतीय की मदद करने में सदा अग्रसर रहती हैं। सुषमा के अथक प्रयत्नों से ही 2014 में 46 भारतीय नर्सों को इस्लामी आतंकियों के चंगुल से छुड़ाया गया था। उन्हीं की कोशिशों के कारण फादर एलेक्सिस और डिसूजा को अफगानिस्तान से बचाकर लाया गया था। कई पाकिस्तानी मरीजों को विशेष वीजा देकर सुषमा ने उनकी जान बचाई।

इसी कड़ी में उनके राज्यमंत्री और भारत के पूर्व सेनापति वी.के. सिंह तीन बार मोसुल गए और उन्होंने इन गुमशुदा भारतीयों की खोज के लिए जमीन-आसमान एक कर दिया। यह ठीक है कि इन मृतकों के बीच से भागकर बच निकले हरजीत मसीह के इस दावे पर सरकार ने भरोसा नहीं किया कि उसके सारे साथी मारे गए हैं लेकिन मसीह के पास दिखाने के लिए कोई ठोस प्रमाण नहीं था। अब भारत सरकार के अथक प्रयत्न से उन सब लोगों के शव खोज निकाले गए हैं और उनकी पहचान भी कर ली गई है। सरकार उनके परिवारों की वित्तीय सहायता भी करेगी।

ऐसे में विरोधियों द्वारा सरकार की टांग-खिचाई करने की बजाय मृतकों के परिवारों के लिए सहानुभूति और सहायता की पहल होनी चाहिए। इसके अलावा सरकार और विरोधी दलों का आग्रह यह होना चाहिए कि सीरिया और इराक जैसे युद्ध-स्थलों पर भारतीय नागरिकों को जाने से रोका जाए। रोजी-रोटी की तलाश में भारतीय नागरिकों को अपनी जान हथेली पर रखना पड़ती है, क्या यह भारत के लिए सम्मान की बात है?

दलितों को समझना चाहिए कोर्ट ने सिर्फ SC/ST एक्ट का दुरुपयोग रोका है

भारतीय समाज की विडंबना ही है कि अनुसूचित जाति जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम की 21वीं सदी में भी जरूरत पड़ रही है। लगभग सात दशक पहले संविधान में दिये गये समानता के अधिकार के बाद भी देश में जाति आधारित भेदभाव समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा। इस तस्वीर का दूसरा पहलु भी है, वंचितों व शोषितों को बचाने के लिए बनाए गए कानूनों का दुरुपयोग भी हो रहा है। समाज को जोड़ने के उद्देश्य से लाए गए कानून उसी समाज को बांटते दिखने लगे हैं। इस बात के पक्ष में दो उदाहरण दिए जा सकते हैं। धनरूआ पुलिस ने 2017 में दो दंगाईयों को गिरफ्तार किया। इस हंगामे को कराने में मसौढ़ी की विधायक रेखा देवी के खिलाफ भी मामला दर्ज किया गया। इस पर विधायक ने मसौढ़ी डीएसपी सुरेंद्र कुमार पंजियार के खिलाफ जातिसूचक शब्दों का प्रयोग करने की प्राथमिकी दर्ज करा दी। इससे पुलिस प्रशासन में खलबली मच गई लेकिन आरोपों की जांच की गयी, तो गलत मिले। दूसरी ओर वंचित व शोषित वर्गों पर तो हर रोज कहीं न कहीं उत्पीड़न की खबरें सुनने व पढ़ने को मिल जाती हैं। इससे साफ है कि एससी एसटी एक्ट की आवश्यकता पहले जितनी ही है परंतु जरूरत है इसका दुरुपयोग रोकने की, जिस तरफ एक सकारात्मक कदम देश की सर्वोच्च अदालत ने उठाया है। अदालत के इस फैसले से उक्त एक्ट और मजबूत व प्रभावी बनने वाला है।

महाराष्ट्र के सरकारी अधिकारियों के खिलाफ उक्त कानून के दुरुपयोग पर विचार करते हुए न्यायालय ने आदेश दिया कि इसके तहत दर्ज ऐसे मामलों में फौरन गिरफ्तारी नहीं होनी चाहिए। न्यायमूर्ति आदर्श गोयल और यूयू ललित की पीठ ने कहा कि किसी भी लोकसेवक की गिरफ्तारी से पहले न्यूनतम पुलिस उपाधीक्षक रैंक के अधिकारी द्वारा प्राथमिक जांच जरूर होनी चाहिए। लोक सेवकों के खिलाफ दर्ज मामलों में अग्रिम जमानत देने पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। इसके तहत दर्ज मामलों में सक्षम अधिकारी की अनुमति के बाद ही किसी लोक सेवक को गिरफ्तार किया जा सकता है। 1989 में इस कानून को एक खास जरूरत के कारण बनाया गया था। 1955 के प्रोटेक्शन ऑफ सिविल राइट्स एक्ट के बावजूद न तो छुआछूत का अंत हुआ और न ही वंचितों पर अत्याचार रुके। देश की चौथाई आबादी इन समुदायों से बनती है और आजादी के इतने साल बाद भी उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति तमाम मानकों पर बेहद खराब है।

इस अधिनियम के तहत अनुसूचित वर्गों के विरुद्ध किए जाने वाले नए अपराधों में जूते की माला पहनाना, उन्हें सिंचाई सुविधाओं तक जाने से रोकना या वन अधिकारों से वंचित करके रखना, मानव और पशु कंकाल को निपटाने, कब्र खोदने के लिए तथा बाध्य करना, सिर पर मैला ढोने की प्रथा का उपयोग और अनुमति, इन वर्गों की महिलाओं को देवदासी के रूप में समर्पित करना, जाति सूचक गाली देना, जादू-टोना अत्याचार को बढ़ावा देना, सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार करना, चुनाव लड़ने से रोकना, महिलाओं के वस्त्र हरण करना, किसी को घर, गांव और आवास छोड़ने के लिए बाध्य करना, धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाना, यौन दुर्व्यवहार करना दंडनीय अपराध है। इसमें कोई दोराय नहीं कि इस कानून से वंचित व शोषित समाज को सम्मान के साथ जीने में बहुत बड़ा सहारा मिला है और उत्पीड़न की घटनाओं पर विराम लगाने में काफी मदद भी मिली परंतु वर्तमान में देखने में यह आने लगा कि यह कानून सामान्य वर्ग के लोगों के उत्पीड़न व ब्लैकमेलिंग का हथियार भी बनने लगा। सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख महाराष्ट्र के आए केस से ही साफ हो जाता है कि कुछ गलत मानसिकता के लोग इसका दुरुपयोग समाज को बांटने व लोगों को डराने में कर रहे हैं। राज्य के दो अधिकारियों ने आरक्षित वर्ग के कर्मचारी के काम पर प्रशासनिक टिप्पणी की, जिस पर कर्मचारी ने अपने वरिष्ठों पर इस एक्ट की शिकायत दर्ज करवा दी।

यह केवल महाराष्ट्र का मामला नहीं, सामान्यतः सरकारी दफ्तरों में देखा जाता है कि कोई अधिकारी अपने जूनियर आरक्षित वर्ग के कर्मचारियों को उनके कामकाज के बारे में कहने से भी कतराते हैं कि कहीं उसके खिलाफ इस तरह की शिकायत न कर दे। यह क्रम यूं ही चलता रहा तो हमारा प्रशासनिक ढांचा कितनी देर तक ठहर पाएगा। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की रिपोर्ट के अनुसार, इस एक्ट के तहत दर्ज होने वाले 16 प्रतिशत केस आरंभ में ही बंद हो जाते हैं और 75 प्रतिशत केसों में या तो आरोपी छूट जाते हैं या बाहर ही समझौता हो जाता है। अंततः बड़ी मुश्किल से 2.4 प्रतिशत केसों में ही किसी को सजा हो पाती है। इसके दो अर्थ निकाले जा सकते हैं, एक या तो कानून लागू करने वाली एजेंसियां अपना काम सही तरीके से नहीं करतीं दूसरा कि इस तरह की अधिकतम शिकायतें झूठी होती हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने जो व्यवस्था दी है उससे इन दोनों कारणों से छुटकारा मिलने वाला है। डीएसपी स्तर के सक्षम अधिकारी द्वारा केस फाइल करने से जहां केस में तथ्यात्मक मजबूती आएगी वहीं प्रारंभिक जांच में झूठी शिकायतें स्वतः निरस्त हो जाएंगी। जहां तक आरोपी को अग्रिम जमानत देने की बात है वह उसका संवैधानिक अधिकार है। जमानत जब हत्या व बलात्कार जैसे गंभीर अपराधों में दी जा सकती है तो इस कानून में क्यों नहीं मिलनी चाहिए? न्यायालय के निर्णय पर बेवजह हल्ला मचाने वालों को समझना चाहिए कि किसी कानून को समाप्त नहीं किया गया बल्कि यह सामयिक सुधार का प्रयास है। हर कानून में समय-समय तत्कालिक जरूरतों के अनुसार बदलाव व सुधार हुए हैं। अदालत के इस कदम से जहां इस कानून को लेकर समाज में भय का वातावरण समाप्त होगा वहीं यह और भी प्रभावी रूप में सामने आएगा। वंचितों व शोषितों की उन सच्ची व वाजिब शिकायतों का निपटारा होगा जो आज फर्जी केसों के बीच दबी कराह रही हैं।